Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2019 GISRRJ | Volume 2 | Issue 3 | ISSN : 2582-0095

संस्कृत साहित्य में नारी

भानु प्रकाश उनियाल
शोधच्छात्र,
देव संस्कृति विश्वविद्यालय,
हरिद्वार,भारत।

सारांश– नारी समाज व सृष्टि का आधार होती है। समाज के निर्माण में नारी की मुख्य भूमिका होती है। हमारे वैदिक वांगमय में नारी को पुरुष की सहधर्मिणी कहा जाता है तथा स्त्री को भारतीय साहित्य में पुरषों के ही सामान समाज का आधार स्तंभ माना गया है। वैदिक काल में नारी को देवी का स्वरूप मानकर पूजा जाता था जो परम्परा आज भी समाज में दृष्टिगोचर होती है परन्तु आज नारी के साथ अन्याय और शोषण की घटनाएँ भी सुनाई पडती हैं जो अत्यन्त निन्दनीय है। इन सबका प्रमुख कारण है कि हम अपनी संस्कृति और सभ्यता को भूलते जा रहे हैं जो दुर्भाग्य पूर्ण है। स्त्री आज से नहीं अपितु वैदिक काल से ही सम्मान की पात्र मानी गई है। संस्कृत साहित्य में नारी का क्या महत्व था इन्ही सब विन्दुओं पर आधारित है यह शोधपरक लेख।

मुख्य शब्द–नारी, संस्कृत, साहित्य, समाज, देवी।

नारी आदिकाल से ही मानव इतिहास के केन्द्र विन्दु में रही है। नारी एक महान शक्ति है, वह युग की प्रवर्तिका भी है। इसीलिए किसी भी युग विशेष की संस्कृति एवं सामाजिक स्तर का उचित मूल्यांकन तत्कालीन समाज में नारी के जीवन स्तर के आधार पर सही ढंग से किया जा सकता है। समाज में जितनी प्रतिष्ठा नारी को प्राप्त होती है समाज उतनी ही ऊंचाई को प्राप्त करता है। इस दृष्टि से समाज में नारी की स्थिति उस समाज की संस्कृति एवं संस्कार के स्तर को मापने का प्रमुख मापदण्ड होता है। वह ऐसा दर्पण है जिसमें समाज प्रतिबिम्बित होता है। वेदकालीन समाज को इस दृष्टि से श्रेष्ठ माना जाता है। हम देखते हैं

कि वैदिक वाङ्गमय में जैसी गौरवास्पद स्थिति नारी को प्राप्त थी, वैसी संसार के अन्य किसी वाङ्गमय में नहीं दिखाई पडती। नारी सृष्टि के विषय में मनुस्मृति में महर्षि मनु ने कहा है–

द्विधा कृत्वाऽऽत्मनो देहमर्धेन पुरूषोऽभन्।
अर्धेन नारी तस्यां च विराजमसृजत्प्रभुः।।[1]

भारतीय संस्कृति में नारी के उत्तम यश की आराधना पग–पग पर दृष्टिगोचर होती है। महर्षि मनु, वेदव्यास, याज्ञवल्क्य, वसिष्ठ, बाल्मीकि आदि ऋषियों ने नारी के भरपूर यशोगीत गाये हैं, किन्तु उनके मूलस्रोत वेद ही हैं। गृह्यसूत्रकार पारस्कर ऋषि द्वारा निरूपित नारी की महिमा व उसका यशोगान भी वेद का अनुमोदन करता हुआ नारी का गुणानुवाद करता है यथा–

यस्यां भूतं समभवत् यस्या विश्वमिदं जगत्।
तामद्य गाथां गास्यामि या स्त्रीणामुत्तमं यशः।।[2]

अर्थात् जिसमें भूतकालीन प्राणिजगत उत्पन्न हुआ तथा सम्पूर्ण जगत जिसमें आश्रित है, जो सब की जननी है उस यशस्विनी की उत्तम यशोगाथा को हम गाते हैं। वैदिक नारी सृष्टि की अधिष्ठात्री देवी है। उसके इस महान रूप को दृष्टि में रखकर ही हमारे वेदादि शास्त्रों में उसे ब्रह्मा की सर्वोच्च पदवी से विभूषित किया गया है–

स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ।[3]
यन्त्री रा यन्त्रसि यमनी ध्रुवासि धरित्री।
इषे त्वोर्जेत्वा रय्यै पोषाय त्वा।।[4]

नारी पृथ्वी के समान समायुक्त, आकाश के समान निश्चल और यन्त्रकला के समान जितेन्द्रिय होने तथा कुल का प्रकाश करने वाली हो ऐसी अभिलाषा की गयी है। भारतीय जीवन का चरम लक्ष्य पुरुषार्थ चतुष्टय है अर्थात् धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की प्राप्ति। यथा–

धर्मार्थकाममोक्षाख्यं य इच्छेच्छ्रेय आत्मनः।
एकमेव हरेस्तत्र कारणं पादसेवनम्।।[5]

प्राचीन ऋषि–मुनियों ने इन पुरुषार्थ चतुष्टय को प्राप्त करने व जीवन को संयमित रखने के लिए सम्पूर्ण मानव जीवन को चार आश्रमों को विभक्त किया है यथा–

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस् तथा।
एते गृहस्थप्रभवाश् चत्वारः पृथगाश्रमाः।।[6]

अर्थात् ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम तथा सन्यासाश्रम। इन चारों आश्रमों में गृहस्थाश्रम को सभी आश्रमों की रीढ स्वीकार किया गया है। गृहस्थाश्रम से तात्पर्य है गृह अथवा परिवार। परिवार का केंद्र बिन्दु स्त्री होती है, स्त्री के बिना पुरुष अपूर्ण होता है। स्त्री, स्नेह और सन्तान ये तीनों ही मिलकर पुरुष को

पूर्ण बनाते हैं। सन्तति के रूप में पुरूष की स्त्री से उत्पत्ति, स्त्री के स्नेह से सिंचित होने से उसका विकास तथा धर्मार्थ काम (त्रिवर्गों) की प्राप्ति में पत्नी का सहयोग इन्हीं से पुरूष पूर्ण होता है।

स्त्री शक्ति है, जीवन का आवश्यक अंग हैं। स्त्री को सर्व शक्तिसम्पन्न, विद्या, शील, करुणा, दया, ममता, यश और सम्पत्ति का प्रतीक स्वीकार किया गया है। स्त्री सहानुभूति, संवेदना, वात्सल्य, मधुरता और प्रेम का स्रोत होती है। भारतीय समाज में स्त्री ने युगानुरूप अनेक उतार–चढ़ाव देखे हैं, उन स्थितियों का वहन किया है। सामान्यतः भारतीय इतिहास के लम्बे काल में स्त्री समाज का अभिन्न अंग होते हुये भी दयनीयता, घृणा एवं उपेक्षा का पात्र रही है। आधुनिक समय में निरन्तर स्त्री की स्थिति को समकक्ष लाने का प्रयत्न किया जा रहा है। स्त्री के विकास में उसके अन्दर आत्मविश्वास का होना अत्यन्त आवश्यक है। वैदिक वाङ्मय में स्त्री प्रेरणा का वह स्रोत है जो आज भी स्त्री में आत्मविश्वास उत्पन्न कराता है, कि भारतीय संस्कृति के प्रारम्भ में जब स्त्री ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में समान सहभागिता का निर्वाह किया था, तो अभी भी वह अपना विकास कर उस स्थान को प्राप्त कर सकती है। नारी प्रकृति की पर्यायभूत, जननी और सिद्धिदात्री है। इसलिए भारतीय जनमानस में नारी सदा–सर्वदा पूज्या रही है। भारतीय परम्परा में नारी मातृसत्ता की प्रतीक मानी गयी है जैसे कहा भी गया है–

या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता।

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।।[7]

प्रत्येक मनुष्य अपनी माँ से भाषा (मातृभाषा) सीखता है, तदनन्तर अन्य भाषाओं का ज्ञान प्राप्त करता है। माँ ही शिशु की प्रथम गुरु होती है। यदि मॉ शिक्षित होगी तो पूरा परिवार स्वतः ही शिक्षित हो जाता है। शिक्षित नारी ही दूसरों को शिक्षा प्रदान कर सकती है। अतः भारतवर्ष में वैदिक काल से ही स्त्री शिक्षा की समृद्ध व्यवस्था दृष्टिगोचर होती है। वैदिक काल में धार्मिक दृष्टि से नारी की स्थिति बहुत ही सुदृढ थी। उस समय पुरुष के समान ही स्त्री को धार्मिक अधिकार प्राप्त था। वैदिक संस्कृति में यज्ञों को बहुत महत्व दिया जाता था। तथा उन्हें सम्पन्न करने के लिए पत्नी का सहयोग अतिशय अपेक्षित होता था। अतः पति के साथ पत्नी अनिवार्य रूप से यज्ञ में भाग लिया करती थी। ऋग्वेद में एक स्थान पर कहा गया है कि स्त्री प्रतिदिन यज्ञ सामग्री लेकर प्रातः सायं यज्ञ करे।[8] सामूहिक यज्ञ में भी स्त्रियां जाती थीं। यज्ञशाला में उन्हें प्रथम पंक्ति में स्थान दिया जाता था तथा वे सबसे पहले यज्ञशाला में प्रवेश करती थी।[9] पति की अनुपस्थिति में पत्नी अकेले यज्ञ सम्पन्न करती थी। इन्द्राणी ने ऐसे अनेक यज्ञ सम्पन्न किये थे। स्त्रियां यज्ञ वेदी के निर्माण में एवं याज्ञिक क्रियाओं में पति का पूरा सहयोग करती थी और अग्नि के परिचरण के अवसर पर विशेष मन्त्रों के उच्चारण से हवन कार्य सम्पन्न करती थी। प्रत्येक गृहस्थ के यज्ञ की पूर्ति पत्नी के सहयोग के बिना नहीं हो सकती थी क्योंकि पत्नी से हीन व्यक्ति यज्ञ के लिए किसी भी प्रकार से उपयुक्त पात्र नहीं माना जाता था।[10] 200 ई. पूर्व तक नारियों को वेदाध्ययन और यज्ञ करने का अधिकार प्राप्त था।

पत्नी को लक्ष्मी समरूप मानते हुए पति से उसके आदर की अपेक्षा की गयी है। प्राचीन समय में पत्नी को ही घर कहा गया है। गृहिणी के विना घर घर नहीं होता है। पति व पत्नी दोनों मिलकर ही दम्पति शब्द को सार्थक करते हैं, अकेले पुरूष का अस्तित्व समाज में स्वीकार नहीं किया गया है–

न गृहं गृहमित्याहुः गृहिणी गृहमित्युच्यते।
गृहं तु गृहिणीहीनं कान्तारादतिरिच्यते।।[11]

वैदिक कालीन परिवार में वयोवृद्ध पुरूषमुखिया की भाँति वयोवृद्ध महिला गृह प्रबन्ध की संचालिका होती थी। समस्त गृहकार्य उसके संरक्षण और इच्छानुसार सम्पन्न किये जाते थे। माता का पद सर्वाधिक आदरणीय था। पृथ्वी के साथ मातृ रूप की तुलना कर उसे अन्नदात्री, ज्ञानदात्री और सुखदात्री कहा गया है। ऋगवेद में परमात्मा के लिये पिता के स्थान पर माता शब्द का प्रयोग सन्तुष्टि प्रदायक बताया गया है। नारी को दया की देवी स्वीकार किया गया था। इसलिए उपनयन संस्कार के समय बालक घर की स्त्रियों से ही भिक्षा मांगता था, जिसमें सर्व प्रथम माता से भिक्षा लेता था। कहा गया है–

मातरं वा स्वसारं वा मातुर्वा भगिनीं निजाम्।
भिक्षेत भिक्षां प्रथमं या चौनं नाऽवमानयेत्।।[12]

कौशल्या और तारा को रामायण में मन्त्राविद् कहा गया है। इस प्रकार उस समय ऐसा कोई धार्मिक व सामूहिक कार्य नहीं था जिसमें नारियाँ भाग न लेती हों। महिलाओं ने जब–जब शिक्षा जगत के क्षेत्र में कदम रखा है तब–तब उन्होंने स्वयं को तथा राष्ट्र को उठाने व उसके विकास में भरपूर योगदान देकर अनेक कीर्तिमान स्थापित किए हैं। वैदिक काल से महाभारत कालपर्यन्त नारी जाति का पूर्ण सम्मान होता रहा है। और उसके पीछे एक प्रमुख कारण था– नारी का उच्चतम शिक्षित होना। अत एव उस काल में अनेक सूक्तों का दर्शन कराने ऋषिकाएँ विश्ववारा, लोपामुद्रा जैसी महिलाएं प्रसिद्ध हुई। तो वहीं गार्गी जैसी ब्रह्मवादिनी विदुषियों ने राजा जनक की सभा में उस समय के दिग्गज दार्शनिकों के साथ शास्त्रार्थ किया था। संभवतः भारत–भारती के निम्न पद्य में मैथिलीशरण गुप्त के मानस पटल पर यही भाव अभिव्यंजित हुए हैं–

क्या कर नहीं सकती भला जो शिक्षिता हो नारियाँ।
रण–रंग–राज्य सुधर्मशिक्षा कर चुकी सुकुमारीयाँ।।
लक्ष्मी अहिल्या बायजाबाई भवानी पद्मिनी।
ऐसी अनेकों देवियाँ है जो गिनी जा सकती नहीं।।[13]

ऐसे अनेक प्रमाण मिलते हैं जिनसे ज्ञात होता है कि प्राचीन काल की स्त्रियाँ अनेक विषयों की शिक्षा–दीक्षा प्राप्त करती थी। कठिन से कठिन तथा दुरूह से दुरूह विषयों की वो प्रकाण्ड पण्डिता होती थीं। माता के रूप में स्त्री मनुष्य समाज में सबसे बड़ी गुरु कही गई है। मनुस्मृति में सभी प्रकार के गुरुओं में माता को श्रेष्ठ बताते हुए कहा गया है–

उपाध्यायान् दशाऽऽचार्य आचार्याणां शतं पिता।

सहस्रं तु पितृन् माता गौरवेणातिऽरिच्यते।।[14]

अर्थात् आचार्य दश उपाध्यायों से अधिक गौरवशाली होता है। पिता सौ आचार्यों से भी अधिक गौरवशाली होता है किन्तु माता हजार पिताओं से भी अधिक गौरवशाली होती है। यदि माताऐं अपने बच्चों को उदारता, सहिष्णुता तथा धर्म के शाश्वत मूल्यों का पाठ पढ़ायें तो सांप्रदायिक वैमनस्य के निराकरण में यह उनकी सबसे बड़ी भूमिका होगी। यदि माताऐं अपने–अपने बच्चों को सौहार्द का पाठ पढ़ायेगी तो समाज में साम्प्रदायिकता स्वतः ही समाप्त होने लग जायेगी। कोई भी माँ यह नहीं चाहती कि उसका बेटा सामाजिक विघटन के कार्यो में लिप्त हो। हमारे समाज में माँ के प्रति सदैव सम्मान की भावना रही हैं। आदि गुरु शंकराचार्य ने कहा है–

पृथिव्यां पुत्रास्ते जननि बहवः सन्ति सरलाः
परं तेषां मध्ये विरलतरलोऽहं तव सुतः।
मदीयोऽयं त्यागः समुचितमिदं नो तव शिवे
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति।।

अर्थात् संसार में कुपुत्र अनेक पैदा हो सकते हैं परन्तु माता कभी भी कुमाता नहीं हो सकती है। इस प्रकार मातृत्व की महिमा के कारण स्त्री सांप्रदायिक वैमनस्य के क्लेश को मिटाने में सहायक हो सकती है। माँ बच्चे को सदैव उदार मना बनाने का प्रयास करे और अपने धर्म के साथ–साथ अन्य धर्मों का भी बच्चे को सम्मान करना सिखाए तो समाज की बुराईयों को जड़ से मिटाया जा सकता है। वर्तमान समय में स्त्रियां जागृत हो रही हैं तथा जीवन के सभी क्षेत्र में आगे आ रही हैं, जो कि एक सशक्त राष्ट्र निर्माण में सराहनीय पहल है। एक सभ्य समाज के निर्माण में शिक्षित नारियों को समाज की विषमताओं के निवारण हेतु सदैव तत्परता से आगे आना चाहिए। क्योकि स्त्रियों के पारम्परिक गुण सेवा भावना, वात्सल्य, दया, प्रेम, स्नेह, करुणा, ममता, उदरता आदि होते हैं जिनसे समाज व परिवार संगठित रहता है तथा नए–नए कीर्तिमान स्थापित करता है। अतः स्त्रियों के स्वाभाविक गुण उनमें बने रहने अत्यन्त आवश्यक हैं। वर्तमान समय में स्त्रियों के ऐसे अनेक संगठन हैं जो इस दिशा में सुचारु रूप से कार्य कर रहे हैं। महर्षि मनु ने कहा है–

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राऽफलाः क्रियाः।।
शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत् कुलम्।
न शोचन्ति तु यत्रैता वर्धते तद् धि सर्वदा।।[15]

अर्थात् जिस समाज में नारियों का सम्मान होता है, उनकी पूजा होती है वह समाज सदैव प्रगतिशील रहता तथा वहां देवता निवास करते हैं। जहाँ स्त्रियां पूजित (सम्मानित) नहीं होती हैं वहां सभी यज्ञादि क्रियाऐं निष्फल होते हैं। जिस घर में पुत्री, बहन, पुत्रवधू इत्यादि स्त्रियां शोकमग्न नहीं होती हैं वह घर सर्वदा उन्नतीशील रहता है। तथा जिस घर में पुत्री, बहन, पुत्रवधू आदि स्त्रियां शोकाकुल व प्रताडित होती हैं उस घर की हमेशा अवनति ही होती है। अतः गौरवशाली व प्रगतिशील समाज की अवधारणा हेतु हमें

स्त्रियों का सम्मान करना होगा तथा उन्हे शिक्षा के अवसर सतत प्रदान करने होंगे तभी हम एक सभ्य समाज की कल्पना को साकार कर सकते हैं।

सन्दर्भ–

1. मनुस्मृति 1/32

2. पारस्कर गृह्यसूत्र 1.7.2

3. ऋग्वेद 8.33.19

4. यजुर्वेद–14.22

5. श्रीमदभागव–4/8/30

6. मनस्मृति 6/87

7. दुर्गासप्तशती 5/71–73

8. ऋ. 716

9.वेदों में नारी, पृष्ठ संख्या–10

10. तैत्तिरीय ब्राह्मण, 2226

11. पञ्चतन्त्र, लब्धप्रणाशम्–58

12. मनुस्मृति 2/50

13. मैथलीशरण गुप्त कृत भारत–भारती

14. मनुस्मृति 2/145

15. मनुस्मृति 3/56–57